जनवाचन आंदोलन

बाल पुस्तकमाला

दुनिया की सबसे मशहूर ग्रीन क्लासिक। एक अनपढ़ गडेरिए की कहानी जो अपनी लगन से एक बियाबान इलाके में बीज बोकर एक पूरी पथरीली पहाड़ी को हरा-भरा कर देता है। इस जादुई किताब को पढ़कर असख्यों लोगों ने पेड़ लगाए हैं। दुनिया की महान प्रेरणास्पद पुस्तकों में अनूठी। किसी भी संवेदनशील इंसान के लिए इस पुस्तक को पढ़ना अनिवार्य है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य: 12 रुपए B - 43 Price: 12 Rupees

जिसने उम्मीद के बीज बोये

ज्याँ गिओनो

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने देश भर में चल रहे साक्षरता अभियानों में उपयोग के लिए किया गया है। जनवाचन आंदोलन के तहत प्रकाशित इन किताबों का उद्देश्य गाँव के लोगों और बच्चों में पढ़ने-लिखने की रुचि पैदा करना है।

जिसने उम्मीद के बीज बोये : ज्यां गिओनो
The Man Who Planted Trees* Ñ *Jean Giono
प्रस्तुति : अरविन्द गुप्ता

जनवाचन बाल पुस्तकमाला के तहत भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित

चित्रांकन: माईकिल मिकर्डी
लेज़र ग्राफिक्स: अभय कुमार झा

पांचवां संस्करण : वर्ष 2007

मूल्य: 12 रुपए
Price : 12 Rupees

Published by Bharat Gyan Vigyan Samiti
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block Saket , New Delhi - 110017
Phone : 26569943, Fax : 26569773,
Email: bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com
Printed at Sun Shine Offset , New Delhi - 110018

जिसने उम्मीद के बीज बोये

ज्यां गिओनो

जिसने उम्मीद के बीज बोये

किसी आदमी की इंसानियत का सही अंदाज़ लगाने के लिए उसे एक लंबे अर्से तक जांचना-परखना ज़रूरी है। अगर कोई फल की इच्छा करे बगैर दूसरों की भलाई में लगा हो तो उससे अच्छा और क्या हो सकता है। जिस इंसान की कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूं उसने तो अपनी मेहनत और लगन से इस धरती की तस्वीर ही बदल डाली।

बात दरअसल काफी पुरानी है। आज से करीब चालीस साल पहले मैं फौज़ में भर्ती हुआ था। साल भर की ट्रेनिंग के बाद मुझे पंद्रह दिन की छुट्टी मिली थी। छुट्टी में घर जाने की बजाए मैंने घुमक्कड़ी की सोची। अपने फौज़ी थैले में कुछ खाने का सामान और पानी की बोतल रख कर मैं सैर को निकल पड़ा। जिस इलाके से

मैं गुज़र रहा था उसे मैं पहले से नहीं जानता था। ज़मीन एकदम बंजर थी। कहीं-कहीं पीले धतूरे की कंटीली झाड़ियां थीं। बाकी जगह सूखी घास के अलावा और कुछ नहीं उग रहा था।

मुझे अब इस इलाके में चलते-चलते दो दिन हो गए थे। यह इलाका काफी वीरान था और माहौल में भी एक सन्नाटा छाया हुआ था। जहां मैं अब खड़ा था वहां शायद कभी गांव रहा होगा। एक झुरमुटे में छह-सात मकान थे जो अब खंडहर में बदल गए थे। इन्हें देखकर मुझे लगा कि आसपास कोई कुआं या पानी का सोता ज़रूर होगा। थोड़ा ढूंढने पर एक नाला दिखाई भी दिया। पर वह भी अब सूख गया था। मैंने वहीं पर कुछ देर आराम करने की सोची। मेरा पानी खत्म हो गया था और प्यास से मेरा

गला चटख रहा था। गांव के एक कोने में एक टूटा मंदिर भी दिखाई दिया। पर वहां अब कोई नहीं रहता था।

जून का महीना था। सूरज की गर्मी से ज़मीन तप रही थी। तेज़ हवा के झोंके धूल के बवंडर उड़ा रहे थे। इस उदासी भरे माहौल को मैं ज़्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सका। मैंने एक संकरी पगडंडी पकड़ी और आगे बढ़ा।

पांच घंटे चलते रहने के बाद भी मुझे कहीं भी पानी नहीं मिला। अब तो मैं पानी की उम्मीद भी खो बैठा था। मेरे चारों तरफ सूखी मिट्टी में उगी कंटीली झाड़ियों के

अलावा और कुछ भी न था। इस सन्नाटे में मुझे दूर एक काली परछाई सी दिखाई दी। मुझे दूर से वह पेड़ जैसा लगा और मैं उस ओर चल पड़ा। पास पहुंचने पर वह एक गड़ेरिया निकला। उसके आसपास पकी मिट्टी में तीस भेड़ें बैठी थीं।

उसने लौकी की तुम्बी में से मुझे पानी पिलाया और कुछ देर बाद वह मुझे अपने घर ले गया। वह एक गहरे प्राकृतिक कुएं में से पानी खींचता था। इतनी गहराई से पानी खींचने के लिए उसने घिरनियों और रस्सियों की एक जुगाड़ बनाई थी।

वह आदमी बहुत कम बोलता था। ऐसा शायद इसलिए

था क्योंकि वह एकदम अकेला रहता था और उसके साथ बोलने वाला कोई नहीं था। पर उसके आत्म-विश्वास को देखकर ऐसा लगता था जैसे वह अपने काम में मुस्तैद हो। इस सुनसान बंजर इलाके में मुझे उससे मिलने की कोई उम्मीद न थी। वो बाकायदा एक पक्के मकान में रहता था, जिसे उसने आसपास के पत्थरों से खुद बनाया था। घर की छत मज़बूत थी। छत से हवा टकरा कर सांय-सांय कर रही थी।

घर में सभी चीजें कायदे-करीने से रखी थीं। बर्तन मंझे-धुले थे और फर्श साफ-सुथरा था। एक कोने में धारदार कुल्हाड़ी रखी थी। चूल्हे की धीमी आग पर पतीली चढ़ी थी जिसमें खिचड़ी पक रही थी। उसने इतनी मुस्तैदी से अपने कोट पर पैबन्द लगाया था कि वह नज़र ही नहीं आता था। उसने खिचड़ी मुझे भी खिलाई। खाने के बाद मैंने सिगरेट जलाई और एक उसे भी दी। उसने कहा कि वह सिगरेट नहीं पीता। उसका एक झबरीला कुत्ता था। पर वह भी अपने मालिक की तरह ही चुपचाप रहता था।

पहली मुलाकात के बाद ही मुझे ऐसा लगा जैसे रात को ठहरने की मंज़ूरी उसने मुझे दे दी हो। क्योंकि अगला गांव करीब डेढ़ दिन की दूरी पर था, इसीलिए यही अच्छा था कि मैं अपने थके पैरों को कुछ सुस्ता

लेने दूं। इस पहाड़ी इलाके में दूर-दराज़ पर कई छोटी-छोटी बस्तियां थीं। बस्तियां आपस में कच्ची सड़कों से जुड़ी थीं। इन बस्तियों में रहने वाले लोग लकड़ी से

कोयला बनाने का धंधा करते थे। कोयले के धंधे की वज़ह से आसपास के सभी पेड़ कट चुके थे। बेरहम हवा को रोकने-टोकने वाला कोई पेड़ नहीं बचा था। टीलों पर हरदम धूल भरी आंधी नाचा करती। कोयले के धंधे में कोई ज़्यादा फायदा नहीं था। कोयले को गाड़ी से शहर तक ले जाते हुए दो दिन लग जाते थे। बदले में दलाल जो पैसा देते थे उससे मुश्किल से खर्च निकल पाता था। कर्ज़, बीमारी और बंजर ज़मीन के कारण कोयले का धंधा करने वाले परिवार भी तिल-तिल करके मर रहे थे।

खाने के बाद गड़ेरिए ने एक छोटा थैला उठाया और उसके सारे बीज मेज़ पर उड़ेल दिए। फिर वह बहुत ध्यान से उनकी जांच-परख करने लगा। वह एक-एक बीज को उठाता, उसे गौर से देखता और बाद में उनमें से अच्छे बीजों को एक तरफ छांट कर रख देता। मैंने सिगरेट का एक कश खींचा और सोचा कि मैं बीज छंटाई के काम में गड़ेरिए की कुछ मदद करूं। परन्तु उसने कहा कि यह काम वह खुद ही करेगा। और जिस लगन और एकाग्रता के साथ वह अपना काम कर रहा था उसे देख कर मुझे अपनी यह दखलंदाज़ी ठीक भी नहीं लगी। हम लोगों के बीच कुल मिलाकर इतनी थोड़ी ही बातचीत हुई थी। बीजों को छांटने के बाद वह उसमें से अच्छे बीजों की दस-दस की ढेरी बनाने लगा। ढेरी बनाते वक्त वह बीजों का बहुत बारीकी से मुआयना

करता। उनमें से थोड़े भी दागी या चटखे हुए बीजों को वह अलग रख देता। इस तरह से उसने सौ अच्छे बीज छांटे, उनको एक थैली में भरा और सोने चला गया।

न जाने क्यों इस इंसान के साथ मुझे बड़ी शांति का अहसास हो रहा था। अगले दिन सुबह मैंने उससे पूछा कि क्या मैं उसके यहां एक दिन और आराम कर सकता हूं। उसने सहज ही इसकी इज़ाजत दे दी। उसके बाद वह दुबारा अपने काम में व्यस्त हो गया। अब आगे और कुछ बातचीत की आवश्यकता भी नहीं थी। पर मेरे अंदर कौतूहल जाग रहा था और मैं उस गड़ेरिए की जीवन–गाथा जानने को उत्सुक था।

सबसे पहले उसने उन छंटे हुए बीजों को एक पानी के बर्तन में भिगो दिया। फिर उसने भेड़ों की बाड़ खोली और उन्हें चरागाह की ओर ले चला। मैंने देखा कि गड़ेरिए के हाथ में लकड़ी की बजाए एक पांच फुट लंबी लोहे की छड़ थी। छड़ मेरे अंगूठे जितनी मोटी होगी। मैं भी चुपके चुपके गड़ेरिए के पीछे हो लिया। भेड़ों का चारागाह नीचे घाटी में था। थोड़ी देर पश्चात भेड़ों को अपने झबरीले कुत्ते की देखरेख में छोड़कर वह खुद, धीरे–धीरे पहाड़ी पर मेरी ओर बढ़ा। मुझे लगा कि वह मेरी इस दखलंदाज़ी पर बौखलायेगा। परंतु उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह अपने रास्ते चला और क्योंकि मेरे

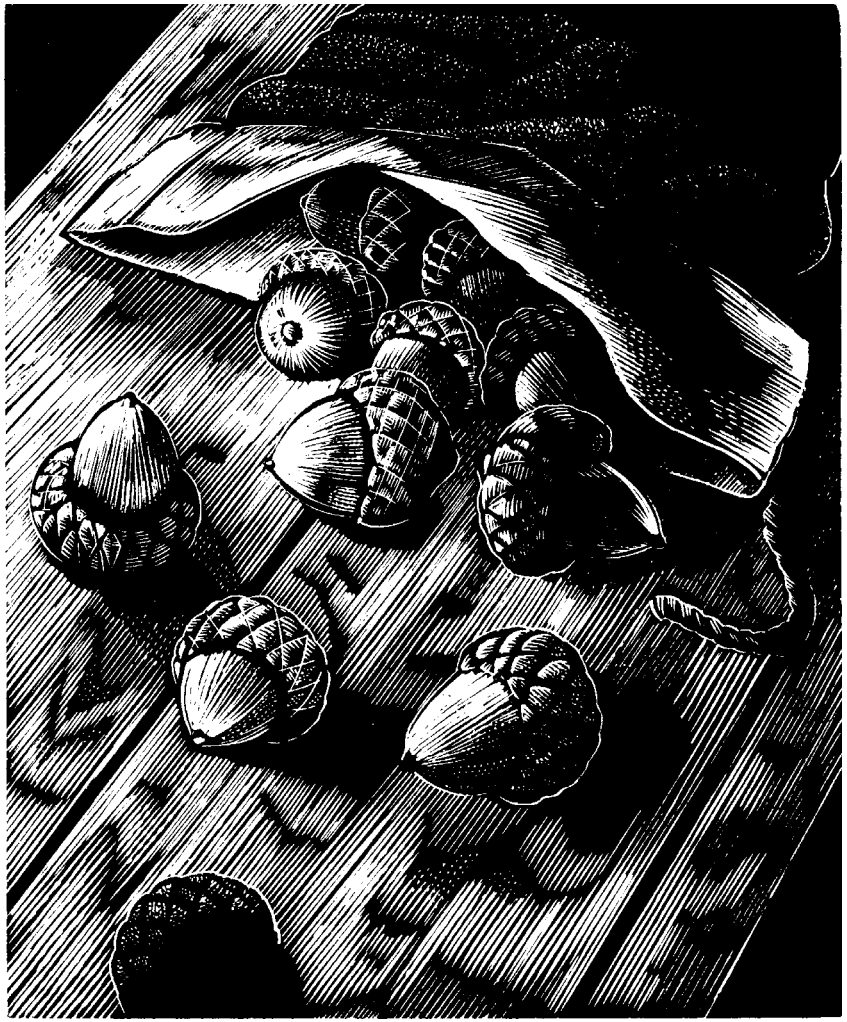

पास और कुछ करने को नहीं था इसलिए मैं भी उसके पीछे–पीछे हो लिया। वह लगभग सौ गज़ की दूरी पर एक टीले पर चढ़ा।

वहां पर उसने लोहे की छड़ से मिट्टी को खोदकर एक गड्ढा बनाया। इसमें उसने एक बीज बोया और फिर छेद को मिट्टी से भर दिया। वह देसी पेड़ों के बीज बो रहा था। मैंने उससे पूछा कि क्या वह ज़मीन उसकी

अपनी ज़ायदाद है। उसे यह भी नहीं मालूम था कि वह ज़मीन किसकी है। शायद वह गांव की सामूहिक ज़मीन हो, या फिर कुछ ऐसे रईसों की जिन्हें इस ज़मीन की कुछ परवाह ही न हो। ज़मीन का मालिक कौन है यह जानने में उसकी कोई रुचि न थी। उसने उन सौ बीजों को बहुत प्यार और मुहब्बत के साथ बो दिया।

दोपहर के खाने के बाद वह बीज बोने के अपने काम में दुबारा व्यस्त हो गया। मैंने शायद अपना सवाल बार-बार दोहराया होगा, क्योंकि अंत में मुझे उसके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी ज़रूर मिली। पिछले तीन बरस से वह उस बियाबान इलाके में पेड़ों के बीज बो रहा था। वह अभी तक एक लाख बीज बो चुका था। इन एक लाख बीजों में से केवल 20 हजार ही पौधे निकले थे। उसे लगता था कि इन बीस हज़ार में से आधे ही ज़िंदा बचेंगे। आधे या तो किसी प्राकृतिक आपदा का शिकार होंगे या फिर उन्हें चूहे कुतर जायेंगे। पर जहां पहले कुछ भी नहीं था वहां अब कम-से-कम दस हज़ार पेड़ तो उग रहे हैं।

यह सब सुनने के बाद मैं उस इंसान की उम्र के बारे में अटकले लगाने लगा। वह निश्चित रूप से पचास वर्ष से ऊपर का होगा। उसने मुझे खुद बताया कि वह पचपन साल का है। एक समय तराई के निचले क्षेत्र में

उसकी खेती-बाड़ी थी। पर अचानक उसके इकलौते लड़के और फिर पत्नी की मृत्यु हो गई। इससे उसको गहरा सदमा पहुंचा। तभी से एकांतवास के लिए वह अपने कुत्ते और भेड़ों के साथ यहां चला आया। उनका मानना था कि पेड़ों के बगैर ज़मीन धीरे-धीरे मर रही है। क्योंकि उसके ज़िम्मे और कोई ज़रूरी काम नहीं था इसलिए उसने ज़मीन की इस खराब हालत को सुधारने की ठानी।

क्योंकि उस समय मैं नौजवान था और सैर सपाटे के लिए एक वीरान इलाके में निकला था, इसलिए मैं उसका मर्म कुछ समझ पाया। मैं उस समय नादान था और एक अच्छे खुशहाल भविष्य की राह तलाश रहा था। मैंने उससे कहा कि अगले तीस बरसों में उसके लगाए गए यह दस हज़ार पेड़ एक घने और सुंदर जंगल का रूप ले लेंगे। उसने मेरे प्रश्न के उत्तर में एक सरल सा जवाब दिया। उसने कहा कि अगर भगवान ने उसे लम्बी उम्र बख्शी तो वह अगले तीस सालों में इतने ज़्यादा पेड़ लगायेगा कि यह दस हज़ार पेड़ तो समुद्र की एक बूंद जितने नज़र आयेंगे।

इसके अलावा वह कुछ फलदार पेड़ों के बीजों के अंकुरण के बारे में भी प्रयोग कर रहा था। इसके लिए उसने अपने घर के बाहर ही एक पौधशाला बनाई थी।

कुछ पौधों को उसने कंटीली तार लगाकर भेड़ों से सुरक्षित रखा था। यह पौधे बहुत अच्छी तरह बढ़ रहे थे। उसने नीचे घाटी में कुछ और किस्म के बीज बोने की योजना बनाई थी। घाटी की ज़मीन में कुछ गहराई पर मिट्टी में नमी थी। इसी वज़ह से यह पेड़ वहां अच्छी जड़ पकड़ते।

अगले दिन मैं वहां से निकल पड़ा।

अगले वर्ष 1914 का पहला महायुद्ध शुरू हो गया। मेरी फौज़ की टुकड़ी इस जंग में पांच साल तक लड़ती रही। एक फौज़ी सिपाही की हैसियत से लड़ाई के दौरान मुझे पेड़ों के बारे में सोचने तक की फुर्सत नहीं मिली। सच बात तो यह थी कि उस घटना का मुझ पर बिल्कुल असर नहीं हुआ था। लोगों के अलग-अलग शौक होते हैं-कुछ लोग डाक-टिकट इकट्ठा करते हैं तो कुछ लोग विभिन्न देशों के सिक्के। कुछ लोगों को शौकिया तौर पर पेड़ लगाने में भी मज़ा आता होगा। मैं इस घटना को लगभग भूल गया था।

लड़ाई खत्म होने के बाद मुझे एक लंबी छुट्टी मिली और साथ में अच्छी खासी रकम भी मिली। मैंने सोचा क्यों न सैर-सपाटा किया जाए। और इसी उद्देश्य से मैं एक दफ़ा फिर उसी वीरान इलाके में घुमक्कड़ी के लिए निकल पड़ा। उस इलाके की हुलिया में कोई खास बदलाव नहीं आया था। परंतु उस खंडहर हुए गांव में जब मैं पहुंचा तो मुझे दूर-दराज़ की पहाड़ियों पर एक धुंध सी नज़र आई। अब जैसे-जैसे मैं उस गड़ेरिए के घर के नज़दीक पहुंच रहा था उसकी याद उतनी ही तरोताज़ा होती जा रही थी। मैं मन में कल्पना कर रहा था कि वह दस हज़ार पेड़ अब कितने बड़े हो गए होंगे।

मैंने तमाम लोगों को जंग के दौरान मरते देखा था। अगर कोई कहता कि वह गड़ेरिया अब मर चुका है, तो इस बात को मानने में मुझे कोई भी दिक्कत नहीं होती। भला पचास-साठ का बूढ़ा मरने के अलावा और कर ही क्या सकता है। पर वह गड़ेरिया मरा नहीं था। वह न केवल ज़िंदा था, बल्कि एकदम भला-चंगा था। उसके काम में थोड़ी बदल ज़रूर आई थी। उसके पास अब केवल चार भेड़ें थीं परंतु सौ मधुमक्खियों के छत्ते थे। उसने अपनी भेड़ों को बेच दिया था। उसे डर था कि कहीं भेड़ें उसके नये पौधों को खा न जायें। मैंने स्पष्ट रूप से देखा कि महायुद्ध से उसके कामकाज़ में कोई फर्क नहीं पड़ा था। वह उस भीषण लड़ाई से एकदम

बेखबर था और लगातार बीज बो रहा था और पेड़ लगा रहा था।

1910 में लगाए पेड़ अब इतने ऊंचे हो गए थे कि उनके सामने हम दोनों बौने जैसे लग रहे थे। हरे, लहलहाते पेड़ों का दृश्य बस देखते ही बनता था। इस असाधारण बदलाव का वर्णन करना भी मेरे लिए संभव नहीं है। हम सारा दिन, चुप्पी साधे इस हरे-भरे जंगल में घूमते रहे। हरे-भरे पेड़ों की यह वादी अब ग्यारह किलोमीटर लंबी और तीन किलोमीटर चौड़ी हो गई थी। यह सब कुछ एक अशिक्षित गड़ेरिए के दो हाथों की कड़ी मेहनत का फल था। उसकी इंसानियत और दरियादिली देख कर मेरा दिल भर आया। मुझे लगा कि

अगर कोई आदमी चाहे तो लड़ाई और तबाही का रास्ता छोड़ कर, वह भी भगवान की तरह एक प्यारी और सुंदर दुनिया गढ़ सकता है।

वह दुनिया में हो रही हलचल से एकदम बेखबर अपने सपनों को साकार कर रहा था। हवा में लहलहाते चीड़ के असंख्यों पेड़ इस बात के मूक गवाह थे। उसने मुझे कुछ देवदार के पेड़ दिखाए जिन्हें उसने पांच बरस पहले लगाया था। उस समय मैं फ्रंट पर लड़ रहा था। उसने इन पेड़ों को घाटी की तलहटी में लगाया था, जहां की मिट्टी में अधिक नमी थी। इन पेड़ों की जड़ों ने मिट्टी को बांधे रखा था। उनकी चौड़ी पत्तियां छतरियों की तरह धूप को रोक रही थीं और ज़मीन को तपने से बचा रहीं थीं।

इस बंजर ज़मीन में पेड़ों के लगने से एक नई जान आई थी। परंतु उसके पास यह सब देखने के लिए वक्त ही कहां था। वह अपने काम में इतना व्यस्त जो था। परंतु वापिसी में, मुझे गांव के पास कुछ झरनों में से पानी की कलकल सुनाई दी। ये झरने न जाने कब से सूखे पड़े थे। पेड़ों के लगने का यह सबसे उत्साहजनक परिणाम था। बहुत साल पहले इन नालों में अवश्य पानी

बहता होगा। जिन खंडहर हुए गांवों का ज़िक्र मैंने पहले किया था, वह शायद कभी इन नालों के किनारे ही बसे होंगे।

हवा भी बीजों को दूर-दूर तक फैला रही थी। पानी के दुबारा बहने से नालों के किनारों पर अनेक प्रकार के पौधे और घासें उग आई थीं। तरह-तरह के बीज जो मिट्टी की चादर ओढ़े सो रहे थे अब अपनी नींद से जागे थे। जंगली फूल अपनी रंग-बिरंगी आंखों से आसमान को ताक रहे थे। ऐसा लगता था जैसे ज़िंदगी जीने में कुछ मतलब हो। पर यह सब बदल इतनी धीमी और प्राकृतिक गति से हुई थी कि उसे मानने में कोई अचरज नहीं लगता था। खरगोश और जंगली सुअर के शिकारियों ने इन पेड़ों के सैलाब को देखा अवश्य था। परंतु उन्होंने उसे पृथ्वी की

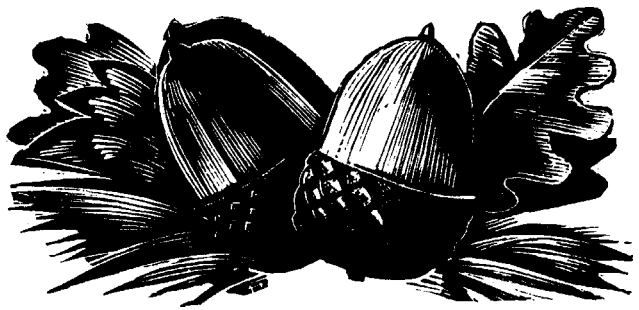

सनक समझ कर भुला दिया था। तभी तो गड़ेरिए के काम में किसी ने कोई दखल नहीं दी थी। अगर उसे किसी ने देखा होता तो अवश्य उसका विरोध हुआ होता। पर उसे ढूंढ पाना बहुत मुश्किल था। सरकार में या आस पास के गांवों में, कभी कोई सोच भी नहीं सकता था कि वह विशाल जंगल किसी ने अपने हाथों से लगाया था। इस अनोखे इंसान के व्यक्तित्व का सही अनुमान लगाने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि वह एकदम अकेला था, और एक सुनसान इलाके में अपना काम करता था। उसके एकांत माहौल में इतनी खामोशी थी कि अंत में वह बोलना-चालना भी भूल गया। शायद यह भी संभव है कि उसकी ज़िंदगी में अब शब्दों की ज़रूरत भी नहीं रह गई थी।

1933 में पहली बार एक फॅारेस्ट रेंजर भूले-भटके उस तक पहुंचा। रेंजर ने उसे उस आदेश से अवगत कराया जिसमें जंगल के आस-पास किसी तरह की बीड़ी-सिगरेट या आग जलाने पर पाबंदी लगा दी गई थी। ज्वलनशील चीज़ों से इस सरकारी जंगल को खतरा था। इस रेंजर ने उस जंगल को खुद-ब-खुद उगते देख कर स्वयं

भी आश्चर्य प्रकट किया। इस समय वह गड़ेरिया अपने घर से करीब 12 किलोमीटर की दूरी पर कुछ चीड़ के पेड़ लगाने की सोच रहा था। इतनी दूर रोज़ आने-जाने की बजाए उसने उसी स्थान पर अपना घर बनाने की सोची। अगले साल वह नये मकान में चला गया।

1935 में उस प्राकृतिक जंगल का मुआयना करने एक बड़ा सरकारी दल भी आया। उसमें वन-विभाग के तमाम अफसर शामिल थे। उन्होंने तमाम बेमतलब की बातें कीं। उनकी निरर्थक बातों से और तो कोई लाभ नहीं हुआ, पर इतना अवश्य हुआ कि सारा जंगल 'सुरक्षित-वन-क्षेत्र' घोषित कर दिया गया। उसका एक फायदा यह हुआ कि लकड़ी से कोयला बनाने के धंधे पर पाबंदी लग गई। इस जंगल की सुंदरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता था। शायद इसी खूबसूरती की वज़ह से ही सरकारी अफसरों का दिल भी पिघल गया था। मुआयने के लिए आए दल में मेरा एक मित्र भी था। जब मैंने उसे जंगल

का सही रहस्य बताया तो वह आश्चर्य चकित रह गया। अगले हफ्ते हम दोनों उस गड़ेरिए के पास गए। वह अपने काम में व्यस्त था। यह जगह मुआयने वाले स्थल से करीब दस किलोमीटर दूरी पर थी।

वह यूं ही मेरा दोस्त नहीं बन गया था। वह एक अच्छा इंसान था और भले काम की इज़्ज़त करता था। जो खाना मैं अपने साथ लाया था उसे हम तीनों ने एक साथ मिलकर के खाया। उसके बाद हम कई घंटों तक उस खूबसूरत जंगल को निहारते रहे। जिस दिशा से हम आए थे उस पहाड़ी के ढलानों पर

लगे पेड़ अब 20–25 फुट ऊंचे हो चुके थे। मुझे साफ याद है कि 1913 में यही ज़मीन एकदम बंजर और बेजान थी। मानसिक शांति, कड़ी मेहनत, पहाड़ों की स्वच्छ हवा और एक सात्विक जीवन ने उस गड़ेरिए को उम्दा सेहत बख्शी थी। इस पृथ्वी पर शायद वह भगवान का अपना दूत था। मैं बस यही सोच रहा था कि वह कितनी सारी ज़मीन पर और पेड़ लगायेगा।

जाने से पहले मेरे मित्र ने मिट्टी को जांच कर कुछ खास किस्म के पेड़ों को लगाने का सुझाव

दिया। लेकिन उसने अपने इस सुझाव पर बहुत ज़ोर नहीं दिया। बाद में उसने मुझ से कहा, 'मेरे आग्रह न करने के पीछे एक अच्छा कारण है। वह गड़ेरिया पेड़ों के बारे में मुझसे कहीं अधिक जानता है।' कोई घंटा भर चलने के बाद मेरे अफसर दोस्त ने मुझ से फिर कहा, 'वह आदमी शायद पेड़ों के विषय में दुनिया में सबसे अधिक जानता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसने खुश रहने का एक अद्‌भुत तरीका खोज लिया है।'

उस अफसर की बदौलत ही जंगल सुरक्षित रह पाया और साथ में गड़ेरिए की खुशी भी। उस अफसर ने जंगल की सुरक्षा के लिए तीन रेंजर नियुक्त किए। उन पर कड़ा अंकुश रखा गया जिससे यह कोयला बनाने वालों द्वारा दी गई शराब की बोतलों जैसी रिश्वत से मुक्त रहें। 1934 में अवश्य इस सुरक्षा के काम में कुछ बाधा आई। रेल की लाइन बिछाने के लिए लकड़ी के स्लीपरों की बड़ी मात्रा में ज़रूरत पड़ी। उसके कारण पेड़ों की अंधाधुंध कटाई शुरू हुई। परंतु यह इलाका रेल स्टेशन या पक्की सड़क की पहुंच से इतना दूर था कि लट्ठों को लाद कर ले जाने

का काम बहुत महंगा साबित हुआ। इसी कारण जंगल कटना बंद हो गया। गड़ेरिए को इस पूरी घटना का कोई आभास भी न था। वह लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर, शांतभाव से, पेड़ लगाने के काम में व्यस्त था। दूसरे महायुद्ध को भी उसने इसी तरह नज़रंदाज़ किया था।

जून 1945 में मुझे उस बूढ़े गड़ेरिए से आखिरी बार मिलने का मौका मिला। उस समय उसकी उम्र करीब छियासी वर्ष की होगी। इस बीच वहां काफी परिवर्तन आया था। इस बियाबान सड़क पर जब मैंने बस को चलते देखा तो मुझे बहुत ताज़्जुब हुआ। मैं कई सुपरिचित स्थानों को पहचान भी न पाया। बस मुझे कई नये इलाकों से

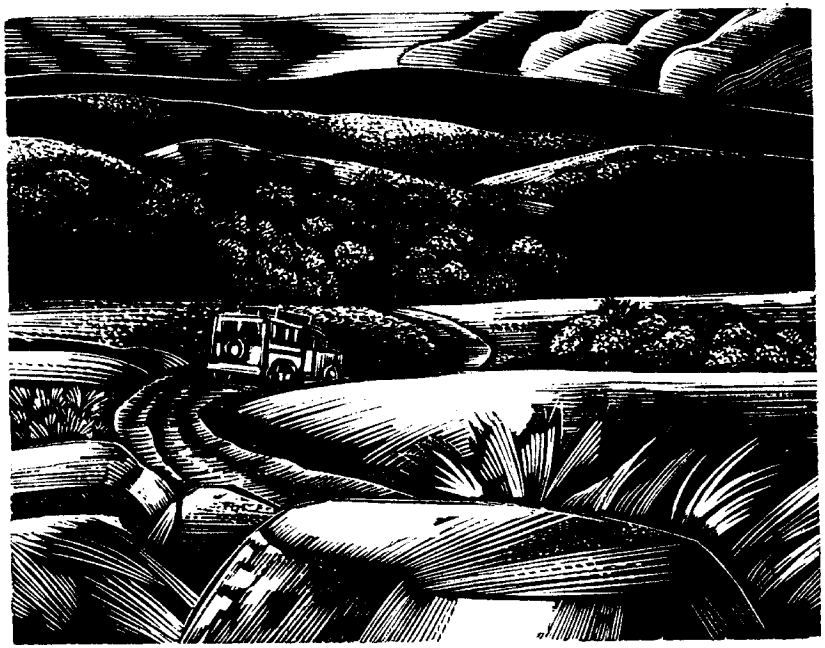

घुमाती हुई ले गई। जब मैंने एक बोर्ड पर उस पुराने गांव का नाम लिखा देखा तभी मुझे इस बात का अहसास हुआ कि यह तो वही गांव है जो एक समय में खंडहर हो गया था।

मैं बस से उतरकर गांव की ओर पैदल ही चला। मुझे साफ याद है कि 1913 में उस गांव के 10–12 टूटे–फूटे मकानों में केवल तीन ही लोग रहते थे। गर्मी और गरीबी के कारण वे बेहाल थे। उनकी हालत आदम युग के वहशियों जैसी थी। उनके आसपास के घरों में कंटीली झाड़ियां उगी हुई थीं। उस निराश जीवन से केवल मौत ही उन्हें मुक्त कर सकती थी।

पर अब सब कुछ बदला हुआ लग रहा था। हवा में अच्छी खुशबू थी। गर्म लू के थपेड़ों की बजाए अब हवा में कुछ नमी थी। एक ओर मुझे पानी के गिरने की आवाज़ सुनाई दी। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब मैंने पाया कि वहां एक छोटे ताल में फव्वारा चल रहा था। और उसके पास ही किसी ने कनक चम्पा का एक खूबसूरत पेड़ लगा रखा था। पेड़ कोई चार साल पुराना होगा। चम्पा का पेड़ इस बात का प्रतीक था कि इस मृत मरुस्थल में अब दुबारा जीवन लौट आया था।

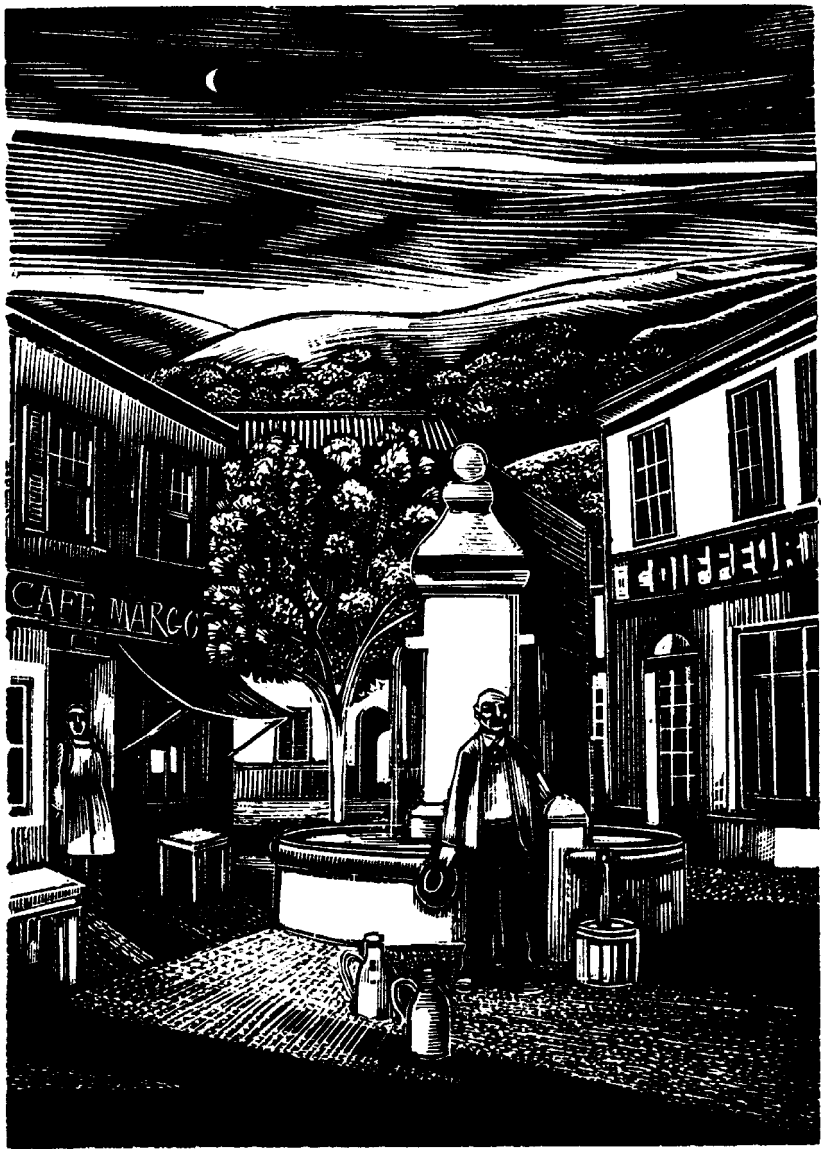

गांव को देखकर ऐसा लगता था जैसे वहां के लोगों का एक उज्जवल भविष्य में विश्वास जगा है। उनमें एक नई आशा जगी है। खंडहरों को हटा कर पांचों घरों की मरम्मत कर पुख्ता बनाया गया था। गांव में अब 28 लोग रहते थे जिनमें चार दंपत्ति भी शामिल थे। नये घरों को हाल ही में लीपा-पोता गया था और उनके सामने क्यारियों में हरी सब्ज़ियां, फल और फूल उग रहे थे। कहीं पर गुलाब और गेंदे के फूल थे तो कहीं पर लौकी और सेम की बेल थी। वह अब ऐसा गांव बन गया था, जहां हरेक किसी के रहने और बसने का दिल करे।

महायुद्ध अभी खत्म ही हुआ था और इस कारण जनजीवन अभी भी पूरी तरह सामान्य नहीं हो पाया था। पहाड़ी के निचले ढाल पर मैंने जौ और बाजरे के खेत देखे। संकरी घाटी में जहां नमी अधिक थी वहां अब हरियाली उग आई थी।

केवल आठ वर्षों में ही यह इलाका हरा-भरा और खुशहाल हो गया था। 1913 में, मुझे जहां खंडहर दिखे थे वहां अब हरे-भरे खेत खड़े थे। लोग भी खुश और सुखी दिखाई पड़ते थे। पहाड़ी नाले जो पहले सूख गए थे अब उनमें दुबारा पिघली बर्फ का निर्मल पानी बहने लगा था। इस पानी को नालियों के जरिए अलग-अलग खेतों में ले जाया जा रहा था। खेतों के पास पेड़ों

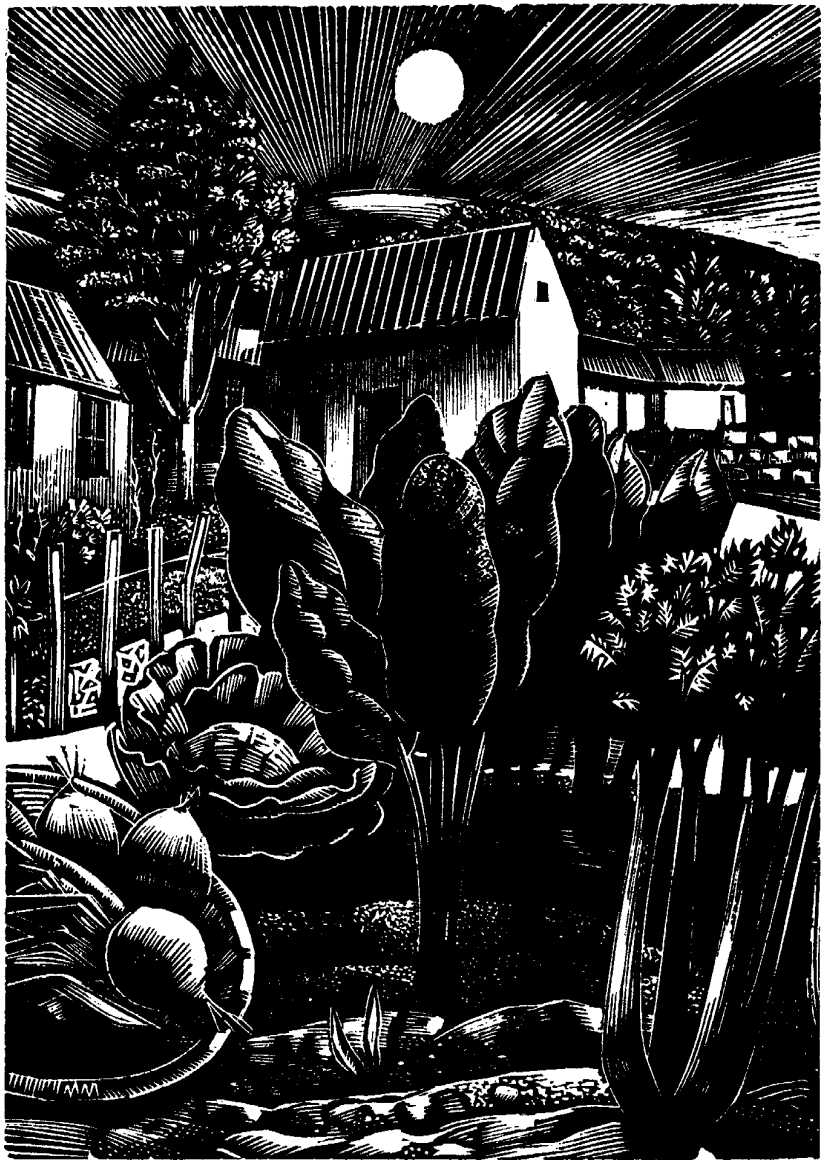

के सायेदार झुरमुटे थे। धीरे–धीरे करके पूरा गांव दुबारा आबाद हो गया था। मैदानी इलाकों में ज़मीन की कीमत महंगी थी। वहां से लोग आकर यहां पर बस गए थे। वह अपने साथ नया उत्साह और उमंग लाए थे। सड़कों पर आप ऐसे लोगों को देख सकते थे जिनके चेहरे पर मुस्कुराहट और आंखों में चमक थी। अगर यहां की पूरी आबादी को गिना जाए तो इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि इन दस हज़ार लोगों की खुशहाली का ज़िम्मेदार वह अनपढ़ गड़ेरिया था।

जब मैं सोचता हूं कि यह सब खुशहाली एक अकेले

आदमी के दिल और हाथों से सम्पन्न हुई है तो मैं नतमस्तक हो जाता हूं। एक साधारण से इंसान ने अकेले ही उस बंजर भूमि को आबाद किया था। जब मैं यह सोचता हूं तो तमाम मुश्किलों के बावज़ूद, इंसानियत में मेरा विश्वास फिर से बुलंद हो जाता है। उस अनपढ़ महान आत्मा के जीवन से मैंने केवल एक ही सबक सीखा है – कि अगर इंसान चाहे तो धरती पर रह कर वह भी भगवान जैसा परोपकार कर सकता है। 1947 में एक पेड़ के नीचे इस गड़ेरिए की आंखें सदा के लिए बंद हो गयीं।

❐❐❐❐